# आधुनिक परिप्रेक्ष्य में महात्मा गाँधी के शिक्षा दर्शन की प्रासंगिकता

मुक्ता कुमारी*

**शोध शारांश :** गांधीजी की शिक्षा–व्यवस्था का दार्शनिक आधार उनके सामाज–दर्शन की बुनियाद में खोजा जा सकता है। यह बुनियाद 'प्रम, सहयोग तथा न्याय' के आधार पर एक नई सामाजिक–व्यवस्था के विकास के स्वप्न पर टिकी है। इस 'नई सामाजिक–व्यवस्था' का आधार है– "सबका कल्याण, सबका उदय।" इसके लिए वे 'नैतिक नियमों' का पालन अनिवार्य मानते हैं। वे कहते हैं– "नैतिक नियमों के पालन में ही मनुष्य–जाति का कल्याण है।" पारस्परिक भावना–स्नेह एवं सहानुभूति को वे इसका आधार मानते हैं। इस संपूर्ण भावना के पीछे 'समानता' का भाव छिपा है। प्रत्येक मानव की 'स्वतंत्रता' का अहसास छिपा है। मधु लिमये गांधी जी की इस विशिष्टता को उनकी 'मानव–स्वभाव की अच्छी परख' के रूप में लेते हुए मानते हैं कि 'गांधी जी स्वभाव को अच्छी परख' के रूप में लेते हुए मानते हैं कि 'गांधी जी मानव स्वभाव को अच्छी तरह समझते थे। उनकी धारणा थी कि सहानुभूति और सहानुकम्पा से काई इसान अछूता नहीं है।"

**शब्द–कुंजी :** संपूर्ण, सहानुभूति, सामाजिक व्यवस्था, विकास।

**प्रस्तावना :** गांधीजी की 'शिक्षा के स्वरूप' का पूरा ताना–बाना बुनियादी तौर पर उनकी उस 'समग्र सामाजिक दृष्टि' के चारों ओर से जुड़ा है, जिसे राष्ट्रीय आंदोलन की एक प्रमुख विचारधारा के रूप में लिया जा सकता है। उनकी बुनियादी दृष्टि 'समाज परिवर्तन' की थी। वे आर्थिक और राजनीतिक सत्ता के तत्कालीन ढाँचे में बुनियादी परिवर्तनों के प्रति प्रतिबद्ध थे। वे इस बात में विश्वास व्यक्त करते थे कि निहित स्वार्थों मे ठोस तबदीली लाए बिना जनसाधारण की स्थिति में सुधार नहीं लाया जा सकता। वे प्रत्येक प्रकार के शोषण की भर्त्सना करते थे।

वस्तुतः 'शारीरिक व मानसिक' श्रम में भेदभाव को मिटाना उनका आधारभूत सिद्धांत था। गांधीजी की दृष्टि में शिक्षा, व्यक्ति के शरीर, मन व आत्मा में विद्यमान 'शुभत्व' के प्रकट करने या विकास करने के प्रयास की प्रक्रिया है। वे

*सहायक प्राध्यापक (शिक्षा) टीचर्स ट्रेनिंग कॉलेज भागलपुर ( TMBU)



स्पष्ट रूप से कहते हैं–

"शिक्षा से मेरा अभिप्राय है– बच्चे व व्यक्ति के शरीर, मस्तिरूष्क व आत्मा में विद्यमान 'श्रेष्ठ तत्त्व' का प्रकटीकरण व चहुँमुखी विकास करना।"

अतः स्पष्ट ही है कि गांधीजी के शिक्षा संबंधी विचार निम्नलिखित बिंदुओं पर आधारित हैं–

- प्रत्येक व्यक्ति शरीर, मन (अथवा मस्तिष्क) व आत्मा का समन्वित रूप है।
- प्रत्येक व्यक्ति में शुभत्व विद्यमान है।
- शिक्षा इसी शुभत्व को बाहर लाने व इसका चहुँमुखी विकास करने की प्रक्रिया है।

यहाँ मनुष्य को 'शरीर, मन (अथवा मस्तिष्क) व आत्मा' का समन्ति रूप मानने का सीधा अभिप्राय यह है कि शिक्षा की प्रक्रिया जिसका विकाास करने जा रही है वह केवल भौतिक शरीर ही नहीं, केवल इन्द्रियों द्वारा प्राप्त सूचनाओं का संग्रह ही नहीं अपितु वह एक चिंतनशील प्राणी है, वह मनन अथवा मंथन करने के योग्य है, सोचने–समझने वाला है, साथ ही 'दिव्य' है, आलोकित होने वाला व आलोकित करने वाला, प्रकाश पंजु है। अतः 'शिक्षा' को इन तीनों के संदर्भ में समझना व समझाना होगा। शिक्षा की प्रक्रिया को उसकी केवल शारीरिक आवश्यकताओं तक ही सीमित न रहना होगा, बल्कि उसकी मानसिक व आध्यात्मिक आवश्यकताओं को भी अपने दायरे में लेना होगा। यहाँ यह भी कह सकते हैं कि गांधीजी की दृष्टि में शिक्षा व्यक्ति के 'दैहिक स्वरूप से चिंतक व आध्यात्मिक स्वरूप' के प्रति उन्मुख करने की प्रक्रिया है। वे कहते हैं– "हम पाशविक बल के साथ उत्पन्न हुए थे, लेकिन हम इसलिए उत्पन्न हुए थे कि हम अपने अंदर रहने वाले ईश्वर का साक्षात्कार कर सकें।" यहाँ यह भी स्पष्ट होनाचाहिए कि गाँधीजी के लिए आत्मिक स्वरूप 'समष्टि' के रूप में विद्यमान हैं। वे कहते हैं "मैं ईश्वर की और इसलिए मानवता की भी निरपेक्ष एकता में विश्वास करता हूँ। यद्यपि हमारे शरीर अनेक हैं, परन्तु आत्मा एक है। मैं अद्वैत में विश्वास करता हूँ।"

अतः मानवीय मूलभूत एकता को अपने जीवन–दृष्टि का आधार बनाते हुए गांधीजी परस्पर स्नेह प्रेम व सहयोग के भाव के विकास में 'शिक्षा' की भूमिका को कहत्त्व देते रहे हैं। सहयोग के इस भाव के संदर्भ में 'सेवा' की चर्चा करते हुए कहते हैं कि 'अवश्य ही सब प्रकार की शिक्षा का लक्ष्य सेवा होना चाहिए। अगर किसी विद्यार्थी को पढ़ाई मकरते हुए भी सेवा करने का मौका मिलता है, तो इस मौके का 'अलभ्य अवसर' के रूप में स्वागत करना चाहिए। उस विद्यार्थी को समझना चाहिए कि इससे उसकी शिक्षा स्थगित नहीं होती, बल्कि अधिक सम्पूर्ण बनती हैं।

(यंग इंडिया 13.10.27) वे बार–बार इस बात की ओर हमारा ध्यान खींचती हैं कि "मानवता की पुस्तक से अच्छी कौन सी पुस्तक हो सकती है?"

यह अपने समय की ऐसी बुनियादी शिक्षा है कि जिसकी बुनियाद ज़िन्दगी के शुरूआत दौर पर टिकी हुई है, और बच्चे के भीतर छिपी हुई है, जिसे–बच्चे की बुनियादी ज़रूरतों (या आदमी की बुनियादी ज़रूरतों) को पूरा करने के लिए, बुनियादी माध्यम (माध्यम मातृभाषा) के द्वारा, बुनियादी तजुर्बों के साथ बाहर लाने की कोशिश करन होगी।

यदि इतिहास के झरोखे से देखा जाए तो गांधीजी के शिक्षा सये जुड़े विचार अपने शिक्षा–संबंधी प्रयोगों के परिणाम हैं। ये प्रयोग किसी नियंत्रणात्मक स्थिति में नहीं किये गए बल्कि सहज रूप में ही हमारे सामने आते है। दूसरों शब्दों, में गांधीजी के शिक्षा से जुड़ेक प्रयेग बुनियादी तौर पर, अपने समय की ज़रूरतों को पूररा करने के लिए चा समस्याओं को हल करने के लिए अपनाए गए (या अपनाए जाने वाले) तरीकों के परिणाम के रूप में पाए गए हैं। इनके पीछे उनके रोज़मर्रा के संघर्षों के अनुभवों का लम्बा इतिहास छिपा हुआ है जिसे मोटे तौर चार भागों में बाँट सकते हैं–

- गुलाम भारत के एक ठेठ भारतीय घर का माहोल,
- पढ़ाई के लिए गए इंग्लैंड का खुला माहोल,
- दक्षिणी अफ्रीका का तनाव भरा माहोल, तथा
- भारत में वापिस आने पर भारत की गरीबी, सामाजिक, राजनैतिक समस्याओं वाला माहोल।

इन सबके साथ–साथ उनके जीवन की सबसे बड़ी घटना जिसने उनके जीवन को मानों एक दिशा दी वह एक किताब से जुड़ी है। वह जॉन रस्किन की किताब 'अन टू दिस लास्ट' है। यह भी सच की गांधीजी इस किताब के विचारों से पूरी तरह सहमत नहीं थे फिर भी प्रभावित ज़रूर हुए। असहमति का कारण विचारों से असहमित नहीं थी, बल्कि उसके दायरे को लेकर थी। रस्किन ने अपनी पुस्तक में 'उपेक्षित अल्पमत' के कल्याण की चर्चा की थी जबकि गांधीजी के विचार सबके उदय के पक्ष में थे और बाद में उनका यही दर्शन 'सर्वोदय' के रूप में हमारे सामने आया।

गांधीजी ने अपने ज्ञान, चिंतन, पर्यवेक्षण, मनन एवं अनुभवों के आधार पर ही शिक्षा के क्षेत्र में 'सर्वोदय समाज एवं जनकल्याण' की कल्पना से परिरक्षित एक 'नवीन शिक्षा योजना' प्रस्तुत की। 'यंग इंडिया (11.07.1929)' में "नई तालीम की ओर" की चर्चा करते हुए वे स्पष्ट स्वीकार करते हैं कि 'लिखने–पढ़ने और अंकगणित का जो कथित ज्ञान इस समय सरकारी पाठशालाओं में दिया जाता है,



वह उत्तर जीवन में लड़के–लड़कियों के बहुत कम काम आता है। काम न पड़ने से ही सही, उसका अधिकांश तो साल भर के भतर ही भुला दिया जाता है।" गांधीजी का स्पष्ट संकेत शिक्षा को 'लिखने–पढ़ने व वर्णित' विषय तक सीमित न करने की ओर ही है। साथ ही उनका यह भी मानना है कि शिक्षा को केवल सैद्धांतिकता तक सीमित करने की अपेक्षा व्यावहारिक होना चाहिए। उनके आसपास के परिवेश से जुड़ना चाहिए। वे कहते हैं, "यदि बच्चों को उनके आसपास की परिस्थितियों के अनुकूल कोई औद्योगिक शिक्षा ही दी जाए, तो वे न केवल पाठशालाओं में हुए खर्च को पूरा कर देंगे, बल्कि उत्तर–जीवन में भी उस तालीम से लाभ उठाएंगे। मैं कल्पना कर सकता हूँ कि किसी स्कूल को कताई की संस्था बना दिए जाए और उसके साथ कपास का खेत जोड़ दिया जसए तो वह बिल्कुल स्वावलंबी हो सकता है।" गांधीजी का संकेत बच्चे की 'करके सीखना' के स्वाभाव के साथ–साथ उसकी क्षमताओं में विश्वास करना के प्रति भी है। बच्चे के विकास की प्रक्रिया को वे 'क्रमिक विकास' के रूप में देखते थे। वे मानकर चलते थे कि प्राथमिक शिक्षा कास कोई पाठ्यक्रम, जिसमें पढ़ना–लिखना और अंकगणित शामिल न हो पूरा नही समझा जा सकता। इतना ही है कि लिखना और पढ़ना आखिरी साल में शुरू होगा। क्योंकि असल में लड़का या लड़की वर्णमाला सही–सही सीखने के लिए उसी समय तैयार होती है। इसके साथ वे यह भी मानते थे कि शिक्षा व्यावहारिक परिवर्तन का एक शांत परन्तु सशक्त साधन है और बच्चे इस परिवर्तन को लाने में एक सक्षम साधन। उनके अनुसार "औद्योगिक शिक्षा के साथ–साथ, जिसमें उनका पाठशाला का अधिकांश दिन लग जाएगा, वे प्रारंभिक इतिहास, भूगोल और अंकगणित की मौखिक शिक्षा भी प्राप्त करते रहेंगे। वे शिष्टाचार सीखेंगे और व्यावहारिक स्वच्छता और स्वास्थ्य–विज्ञान के पदार्थ पाठ से ग्रहण करेंगे। और ये सब बातें वे अपने घर ले जाएँगे जहाँ वे 'शान्त क्रान्तिकारी' बन जाएँगे।" स्पष्ट ही है क व्यक्ति की वैयक्तिकता का अपना विशिष्ट स्थान होते हुए भी 'सामाजिकता' उसका लक्ष्य है। 'शिक्षा' इन ोनों में परस्पर समन्वय की भमिका का निर्वाह करती है। इस समन्वय का एक प्रमुख आयाम है– समाज में फैली बुराईयों, अनियमतताओं को दूर करना। सशक्त व दृढ़ निश्चयी विद्यार्थियों से गांधीजी यही आशा लगाते हैं– "मैं इन लड़कों को बधाई देता हूँ और आशा रखता हूँ कि हर जगह विद्यार्थी समाज–सुधार कराने में प्रमुख भाग लेंगे। जैसे स्वाराज्य की कुंजी उनके पास है ठीक उसी तरह समाज–सुधार की कुंजी भी उनकी जेब में हैं। "साक्षरता–आन्दोलन से जुड़े पूना के विद्यार्थियों से वे कहते हैं, "तुम अच्छा काम कर रहे हो। साक्षरत–आन्दोलन और अनेक ऐसी बातें उस बड़े सुधार की शाखाएँ हैं, जो शायद वर्तमान युग का सबसे बड़ा सुधार है।"

गांधीजी का विद्यार्थियों के साथ 'पत्र–मित्र' का एक अच्छा संबंध था। एक पुस्तक "विद्यार्थियों से" में विद्यार्थियों के साथ हुए पत्र–व्यवहारों के संग्रह से प्रतीत होता है कि वे विद्यार्थियों की प्रत्येक प्रकार की गतिविधियों से परिचित थे। बालक एवं बालिकाओं, दोनों प्रकार के विद्यार्थियों के साथ हुए पत्र–व्यवहार से स्पष्ट रूप से आभास होता है कि वे उनके वांछित एवं अवांछित व्यवहार से भली–भांति परिचित थे। अवंछित व्यवहार हेतु दिए गए सुझावों के आधार पर कहा जा सकता है कि गांधीजी शिक्षा को एक व्यावहारिक समाजीकरण का प्रमुख साधन मानते हैं। सबके लिए 'शिक्षा' की ओर संकेत देते हुए वे मानते हैं कि–

"मौजूदा शिक्षा प्रणाली से हमारे देश की आवश्यकताएँ किसी भी तरह पूरी नहीं होती। अंग्रेज़ी को सब तरह की उच्च शिक्षा का माध्यम बना देने के कारण थोड़े से उच्च शिक्षितों और अधिकांश अशिक्षितों के बीच एक स्थायी दीवार पैदा हो गई है। उसने ज्ञान को आम लोगों में प्रवेश करने से रोक दिया है। अंग्रेज़ी को इस तरह अत्यधिक महत्व देने से शिक्षित वर्ग पर ऐसा बोझा आ पड़ा है, जिससे वे उम्रभर के लिए मन से पंगु और अपने ही देश में पराए बन गए हैं। उद्योग की तालीम न मिलने से शिक्षित वर्ग उत्पादक कार्य के लिए लगभग अयोग्य हो गया है और उसे शारीरिक हानि पहुँची है।"

स्पष्ट ही है कि गांधीजी की शिक्षा–प्रणाली का रूप 'सब शिक्षा ग्रहण करने के योग्य हैं, इसलिए उन्हें शिक्षा मिलनी चाहिए' से जुड़ा है। आवश्यकता है– शिक्षा को शिक्षार्थियों की सामाजिकता व उनकी भाषा से जोड़ने की। अतः शिक्षा का उद्देश्य शिक्षार्थियों की दैनिक आवश्यकताओं से सम्बद्ध होना चाहिए। मानव की सृजनशील प्रकृति के परिप्रेक्ष्य में 'उत्पादन' इसका आवश्यक अंग होना चाहिए। बुनियादी तौर पर शिक्षा व्यक्ति के स्वावलंबन की प्रक्रिया है। उनके शिक्षा सम्बन्धी सिद्धांत को निम्न प्रकार से, उन्हीं के शब्दों में, देखा जा सकता है–

1. जब संपूर्ण शिक्षा स्वावलम्बी होगी तभी वह सच्ची शिक्षा होगी। अर्थात्, पूंजी के सिवा अपना सारा खर्च अन्त में वह आप ही निकाल लेगी। पूंजी ज्यों की ज्यों रहेगी।
2. उसमें हाथ की कुशलता आखिरी मंज़िल तक काम में लाई जाएगी। अर्थात् दिन में कुछ समय तक विद्यार्थियों के हाथ किसी उद्योग में कुशलता के साथ काम करते रहेंगे।
3. सारी शिक्षा प्रान्तीय भाषा के माध्यम से ही दी जानी चाहिए।
4. इसमें साम्प्रदायिक धर्मों की तालीम देने के लिए कोई गुंजाइश नहीं है। सार्वत्रिक नीतिशास्त्र की बुनियादी बातों के लिए इसमें पूरा स्थान रहेगा।
5. यह शिक्षा, चाहे बच्चों को दी जाए या बड़ों को दी जाए, चाहे पुरूषों को दी जाए या स्त्रियों को छात्रों के घरों तक पहुँच जाएगी।
6. चूँकि इस शिक्षा को पाने वाले लाखों विद्यार्थी अपने को सारे भारत का समझेंगे, इसलिए उन्हें एक अन्तर्प्रान्तीय भाषा सीखनी होगी। यह सर्व–सामान्य अन्तर्प्रान्तीय भाषा नागरी उर्दू लिपि में लिखी हुई हिन्दुस्तानी ही हो सकती है। इसलिए छात्रों को दोनों लिपियों में पारंगत होना चाहिए।



**निष्कर्ष :** इस तरह से आर्थिक, राजनैतिक आदि दृष्टिकोणों से विचार किया जाए तो बुनियादी शिक्षा की व्यवस्था सच में एक 'आंदोलन' है। शायद इसीलिए अपने समय में 'नयी तालीम' (नई शिक्षा) के नाम से पुकारा गया। इसके नएपन को समझाते हुए उन्होंने स्पष्ट रूप से कहा कि–

नयी तालीम का नयापन समझना ज़रूरी है। पुरानी तालीम में जितना अच्छा है, वह नयी तालीम में होगा, लेकिन उसमें नयापन काफी होगा। नयी तालीम अगर सचमुच नई होगी तो उसका नतीजा यह होना चाहिए कि हमारे अंदर जो मायूसी है उसकी जगह उम्मीद होगी, कंगालियत की जगह राटी का सामान तैयार होगा, बेकारी की जगह धंधा होगा, झगड़ो की जगह एका होगा और हमारे लड़के–लड़कियाँ लिखना–पढ़ना जानेंगे और साथ–साथ हुनर भी सीखेंगे। जिसकी मार्फत वे अक्ष ज्ञान हासिल करेंगे। ..... जब तक उन्हें (बच्चों को) इतिहास, भूगोल, ज़बानी गणित और कताई की कला का प्रारंभिक ज्ञान न हो जाए, तब तक मैं उन्हें वर्णमाला नहीं सिखलाऊँगा। ..... मैं ज़ोर उद्यम या धंधे पर नहीं, बल्कि हाथ के उद्योग द्वारा शिक्षण पर दे रहा हूँ। साहित्य, इतिहास, भूगोल, गणित आदि सभी विषयों की शिक्षा उद्योग द्वारा ही दी जानी चाहिए।"

**संदर्भ–सूची :**

1. विश्वकर्मा, महादेव राम, 1972, विश्व के महान शिक्षाशास्त्री, बिहार हिंदी ग्रंथ अकादमी, पटना, पृ० 176–177
2. शिक्षा दर्शन, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, नई दिल्ली, 1991, पृ० 132
3. वही, पृ० 183
4. भारतीय दर्शन, राजपाल एंड सन्स, दिल्ली, 1998 (नंदकिशोर गोमिल), पृ० 106–107
5. देवराज डॉ०, संस्कृति के चार अध्याय, लोक भारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1993, पृ० 325–326

*******